© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

बौद्ध शिक्षण केन्द के रुप में विक्रमशिला विश्वविद्यालय का एक समालोचनात्मक अध्ययन

डॉ0 विनोद कुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर,
आदर्श कृष्ण पी0जी0 कालेज शिकोहाबाद

विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना 8वीं शताब्दी में बंगाल के पाल वंशीय शासक धर्मपाल ने बिहार प्रदेश में स्थित भागलपुर से 25 मील दूर की थी। यह पहाड़ी पर गंगा के दक्षिण पार्श्व में स्थित था। पूर्व मध्य युग के शिक्षा–केन्द्रों में इस विश्वविद्यालय की सर्वाधिक ख्याति थी। साधनों के अभाव के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि स्थान के नाम पर विक्रमशिला बिहार का नामकरण हुआ था। जिसके आधार पर स्थान का नाम पड़ा। नवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इसकी ख्याति हो चुकी थी और वह तत्कालीन समाज का प्रमुख ज्ञान–विज्ञान केन्द्र था।

नालन्दा विश्वविद्यालय की तरह ही इस विश्वविद्यालय को भी राजसत्ता की उदारता का द्योतक था। इसके संस्थापक धर्मपाल के बाद भी उसके उत्तराधिकारियों का संरक्षक विश्वविद्यालय को प्राप्त था। अनेक बौद्ध मन्दिरों और विहारों का निर्माण यहाँ कराया गया था। इन विहारों के कक्षों में व्याख्यान हुआ करते थे तथा सर्वदा दर्शन और धर्म की चर्चाये आयोजित की जाती थी। इस विहार का निर्माण बहुत ही सुन्दर रुप से हुआ था। इसमें 6 मुख्य द्वार थे। जिसके मध्य में महाबोधि का एक विशाल मन्दिर था। जिसकी बाहरी दीवारें कलापूर्ण चित्रों में से सुसज्जित थी। इन सभी भवनों के चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर का घेरा था। इसके साथ ही चार सत्र थे। जिसमें रहने और भोजन की निःशुल्क व्यवस्था थी। मध्य प्रागंण के मन्दिर के अतिरिक्त अनेक छोटे–छोटे मंदिर थे जिनकी कुल संख्या एक सौ सात थी। सम्पूर्ण क्षेत्र एक परिखा से आवृन्त था। परिखा के बाहर मुख्य द्वार पर एक धर्मयज्ञ था जिसमें देर से आने वाले अतिथि और पथिक आश्रय पाते थे।

पालवंशीय राजाओं ने अपने शासन–काल में अनेक बुद्ध मन्दिर तथा विहार बनवाये थें और उनके सम्बर्धन के लिये मुक्त हस्त से दान दिया था। राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय के विद्यार्थियो को भोजन एवं आवास की सुविधा एवं सामान्य व्यवस्था के लिये उदारतापूर्वक दान दिया था जिसे उसके उत्तराधिकरियों ने 13वीं शताब्दी तक मुक्त हस्त दान देकर इस शिक्षा संस्था को प्रोत्साहन देने का क्रम अविछिन्न रखा। विक्रमशिला विश्वविद्यालय का प्रबन्ध 6 सदस्यों के परिषद के अधीन था। इस परिषद का एक प्रधान आचार्य निर्वाचित किया जाता था। यही परिषद नालन्दा पर भी दृष्टि रखती थी। अल्तेकर के अनुसार 11वीं शताब्दी तक विक्रमशिला की प्रधानता स्थापित हो चुकी थी। और उसे पाल राजाओं का अधिक प्रश्रय प्राप्त था। तारानाथ ने भी लिखा है कि विक्रमशिला का अधिपति

नालन्दा का संरक्षण करता था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार पर एक द्वार पंडित बैठता था जो प्रवेश पाने वाले विद्यार्थियों की परीक्षा वाद–विवाद के द्वारा करता था इन द्वार पंडितों में रत्नाकर शक्ति, वागीश्वरकीर्ति, नरोपा रत्नव्रज प्रज्ञाकरमति, ज्ञानश्रीमित्र आदि थे। विक्रमशिला बौद्ध महाविहार की शैक्षिक स्थिति से आकृष्ट होकर भारत के अतिरिक्त विदेशी विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करने आते थे। तिब्बत से ज्ञानपिपासु भारतीय पंडितों के चरणों में बैठकर अध्ययन करने आते थे। तिब्बती सूत्रों से ज्ञात होता है कि तिब्बत और विक्रमशिला में अनवरत ज्ञान विनिमय होता था। और विक्रमशिला में रहने वाले अनेक विद्वानों ने अत्यन्त ख्यातिपूर्ण ग्रन्थ लिखें और उनका तिब्बती भाषा में अनुवाद किया। आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान (980ई0) ने उपाध्याय श्रीमल आतिश के नाम से तिब्बत की यात्रा की थी। द्वार पंडितो में परिषद के जो छः सदस्य होते थे वही छः द्वार पंडित का कार्य करतें थे। मठ के निरीक्षक यज्ञ ब्रह्मचार्य कहे जाते थे जो छात्र द्वारपंडितों को पराजित कर देता था वहीं विहार में प्रवेश पाता था। सम्भवतः योग्य छात्रों के चयन तथा अधिक छात्रों के प्रवेश को रोकना इस वाद–विवाद का मुख्य उद्देश्य था। विश्वविद्यालय परिषद छात्रों को पंडित की उपाधि राजाओं द्वारा वितरित करता था।

इस शिक्षण संस्था से जो छात्र अपनी शिक्षा को पूर्ण करते थे। उन्हें शिक्षा समाप्त होने पर जो उपाधि दी जाती थी। वह उसके विषय की दक्षता का प्रमाण मानी जाती थी। यह उपाधि जेतारि तथा रत्नवज्र को पाल राजा महीपाल तथा कनक द्वारा प्रदान की गयी थी। विद्याभूषण के अनुसार विख्यात छात्रों के चित्रों को दिवार पर अंकित करवाकर उन्हें पुरस्कृत किया जाता था। नागार्जुन और आतिश का चित्रांकन हुआ था।विक्रमशिला विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म के बज्रयान सम्प्रदाय के अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र था। आचार्य उच्च कोटि के दार्शनिक एवं विद्वान होते थे। विद्वानों में रक्षित, शान्ति, विरोचन' बुद्ध रत्नाकर ज्ञानपाद, ज्ञानश्रीमित्र जेतारि, अभयंकर, रत्नब्रज दीपंकर नामक विद्वान भिक्षु ने सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की थी। वे इस संस्था के सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्वानों में से एक थे। राजा महीपाल के समकालीन आचार्य आनन्द ने विक्रमशिला में पांच विधाओं का अध्ययन किया था। ये पाँच विधाएं चिकित्सा विद्या, शिल्प विद्या, हेतु विद्या, तंत्र विद्या और अध्यात्म विद्या थी। आतिश ने तिब्बत में बौद्ध धर्म के सुधार में महत्वपूर्ण कार्य किया था। तिब्बती सूत्रों में उन्हे दो सौ मौलिक और अनुवादित ग्रन्थों का रचनाकार बताया गया है। विक्रमशिला बौद्ध विहार का पाठय्क्रम नालन्दा की भांति उदार एवं विस्तृत नहीं था लेकिन विक्रमशिला का पाठ्यक्रम जितना व्यवस्थित था उतना सम्भवत कहीं का नही था। यहाँ के मुख्य विषय व्याकरण, तन्त्रविद्या, अध्यात्म विद्या एवं तर्कशात्र, कर्मकाण्ड न्याय तत्वज्ञान तथा औषधि विज्ञान का अध्ययन होता था। बौद्ध धर्म के महायान शाखा के माध्यमिक तथा योगाचार सिद्धान्तों के साथ अन्य दर्शनो का भी अध्ययन कराया जाता था, परन्तु विक्रमशिला विहार तथा तन्त्र साधना का ही प्रसिद्ध केन्द्र था। यहाँ के द्वार पंडित कुशल तार्किक होते थे। जिससे स्पष्ट होता है कि तर्क यहां का दूसरा मुख्य विषय था। तन्त्रवाद आन्दोलन का मुख्य श्रेय प्रधानतः विक्रमशिला बौद्ध महाविहार को है। तारानाथ ने विक्रमशिला विश्वविद्यालय के बारह तांत्रिक आचार्यों का भी उल्लेख किया है। नालन्दा विश्वविद्यालय की तरह यहां भी आचार्य और शिष्य प्रतिलिपियाँ लिखने मे तत्पर एवं एक दूसरे के सहयोगी होते थे। भिक्षुओं की सम्पूर्ण शक्ति बौद्धिक एवं आत्मिक उन्नति में ही व्यय होती थी उन्हें किसी अन्य भौतिक वस्तु की आवश्यकता नहीं थी। इस विश्वविद्यालय में संस्कृत के ग्रन्थों की रचना हुई जिसमें बहुतों का अनुवाद तिब्बती भाषा में भी हुआ। यहां के आचार्यों की फैली कीर्ति से प्रभावित होकर तिब्बत से अनेक विद्वान यहां के बौद्ध भिक्षुओं को आमन्त्रित करने आये

थे। आचार्य बुद्ध ज्ञानपाद विक्रमशिला का सर्वश्रेष्ठ तंत्राचार्य था। तंत्र पर उसने अनेक रचनायें की एवं उनका तिब्बती में भी अनुवाद किया। उसने मंत्र वज्राचार्य का अध्ययन किया एवं एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की जिसका अध्ययन मात्र विक्रमशिला में ही होता था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में आचार्यों की संख्या से पता चलता है कि छात्रों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। तारानाथ ने 160 पंडितों और स्थायी रुप से रहने वाले 1000 भिक्षुओं का उल्लेख किया है। माना जाता है कि कुछ विद्यार्थी अल्पकालिक शिक्षा भी यहां ग्रहण करते रहे होगे। जो सम्भवतः आज के पत्राचार शिक्षा प्रणाली जैसा होता होगा। बोस के अनुसार 12वीं शताब्दी में इस बौद्ध विहार में 3000 भिक्षु पढ़ते थे। विक्रमशिला का विद्वान रत्नवज्र कश्मीर का रहने वाला था। वहीं पर उसने कई वर्ष तक बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया था। बाद में वह विक्रमशिला का द्वार पंडित नियुक्त हुआ। रत्नाकर रक्षित प्रारम्भ में ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय। में सर्वास्तिवाद शाखा में दीक्षित हुआ था बाद में विक्रमशिला का ख्यातिप्राप्त स्नातक हुआ। जेतारि के शिष्य के रुप में उसने लगभग 13 पुस्तकों की रचना की। विद्वान दीपंकर श्रीज्ञान गौड़ राज्य परिवार में पैदा हुआ था। परन्तु बाद में सम्पूर्ण वैभव त्यागकर उसने धर्मरक्षित से उपसम्पदा ग्रहण की। वह हीनयान, महायान एवं तन्त्र का ज्ञाता था। अध्ययनपूर्ण करने पर उसने स्वर्णदीप में 12 वर्ष तक अध्ययन किया था। बोधगया में उसने अनेक विद्वानों को वाद–विवाद में पराजित किया था। तिब्बत में 13 वर्ष तक अध्ययन एवं संस्कृत पुस्तकों का तिब्बती भाषा में अनुवाद करने का कार्य किया था। 12वीं शताब्दी में अभंयकर गुप्त विक्रमशिला का आचार्य था। उसने तन्त्र पर पुस्तकें लिखी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की सुविधा के लिये पुस्तकालय की भी व्यवस्था थी। चारों दिशाओं में फैली आचार्यों की ख्याति एवं विद्यार्थियों की संख्या से भी यह बात परोक्ष रुप से प्रमाणित होती है कि विक्रमशिला में अति सम्वृद्ध और विशाल पुस्तकालय रहा होगा। इसके अतिरिक्त रहन सहन, खान–पान की उत्तम व्यवस्था होती थी। प्रवज्या, उपसम्पदा, नियुक्ति एवं आच्छादन का समविभाग तथा विहार के अन्य कार्यों का उत्तरदायित्व सम्भालने के लिये परिषद होती थी। 4 भिक्षुओं पर जितना व्यय होता था उससे अधिक एक अध्यापक पर व्यय नहीं होता था। आचार्यों का जीवन साधारण था। आवास एवं भोजन महाविहार की ओर से ही मिलता था।

इस प्रकार विक्रमशिला विश्वविद्यालय धर्म, ज्ञान एवं संस्कृति का प्रचार करता रहा। 13वीं शताब्दी में अन्य विद्या संस्थाओं की भाँति विक्रमशिला विश्वविद्यालय भी विदेशी आक्रमणों का शिकार हुआ। मुस्लिम आक्रमणकारी वख्तियार खिलजी ने इसे गढ़ (किला) समझकर ध्वस्त कर दिया। मिनहाज–उस–सिराज की रचना तबकात–ऐ–नासिरी के उल्लेख से ज्ञात होता है कि इस संघाराम में बहु संख्यक ब्राह्मण रहते थे, जिनके सिर घुटे हुये थे वहाँ हिन्दू धर्म के बहुत से ग्रन्थ थे, जिनकी विशेषता का ज्ञान होने पर आक्रमणकारियों को यह मालूम हुआ कि यह गढ़ नहीं अपितु अध्ययन का स्थान था। मुसलमानों ने इसकी प्रशंसा कीं तथा उन्होंने इन ग्रन्थों को समझने का प्रयास किया किन्तु सभी विद्वान मारे जा चुके थे। आक्रमण के समय महास्थाविर शाक्य श्री भद्र अपने कुछ साथियों के साथ जान बचाकर जगदल होते हुये तिब्बत चले गये। इस तरह से सदियों से ज्ञान का प्रकाश बिखेरने वाला विक्रमशिला विश्वविद्यालय मुस्लिम आक्रमणकारियों का शिकार हुआ और विश्वविद्यालय का दुःखद अन्त हो गया।

संदर्भ

1. आप्टे, जी0डी0 – यूनिवर्सिटीज इन एशियेंन्ट इण्डिया, ।
2. जनरल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग दो, ।
3. अल्तेकर, ए0एस0 – एजुकेशन इन एशियेंन्ट इण्डिया, ।
4. बोस, पी0एन0 – इण्डियन टीचर्स आफ बुद्धिस्ट यूनिवर्सिटीज
5. दास, एस0सी0 – इण्डियन पंडित्स इन दि लैण्ड आफ स्नो
6. तारा नाथ – भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, ।
7. मुखर्जी, आर0 के0 – एशियेंन्ट इण्डियन एजुकेशन, ।
8. पाण्डेय, राजेन्द्र – भारत का सांस्कृतिक इतिहास
9. जनरल आफ दि राजस्थान एशियाटिक सोसाइटी, ।

*****